शोक वंचिता

हिन्दी ADDA

अशोक गुप्ता

शोक वंचिता

उस समय रात के डेढ़ बज रहे थे...।

कमरे की लाइट अचानक जली और रौशनी का एक टुकड़ा खिड़की से कूद कर नीचे आँगन में आ गिरा।

लाइट दमयंती ने जलाई थी। वह बिस्तर से उठी और खिड़की के पास आ कर बैठ गयी। उसके बाल खुले थे, चेहरा पथराया हुआ था लेकिन आँखें सूखी थीं। दमयंती ने खिड़की के बाहर अपनी निगाह टिका दी। चारों तरफ घुप्प अँधेरा था, लेकिन दमयंती को भला देखना ही क्या था अँधेरे के सिवाय...! एक अँधेरा ही तो मथ रहा था उसे भीतर तक... नीचे आँगन में दमयंती की सास के पास दमयंती का पाँच बरस का बेटा सोया हुआ था। वहीं, अपने घर से आई हुई दमयंती की छोटी बहन अरुणा भी सोई हुई थी। अँधेरे को भेद कर देखते हुए दमयंती ने सीढियों पर कदमों की आहट सुनी। अरुणा का आना जान कर भी दमयंती ने सिर नहीं उठाया।, निरंतर बाहर ही देखती रही।

अरुणा बे आहट आकर कुर्सी पर बैठ गई।

'...क्या फिर दिखे थे वह लोग?'

'हाँ... वह हत्यारे... ऊपर से नीचे तक सफेद आकृतियाँ...।'

'कुछ कहा?'

'नहीं, कुछ कहते नहीं वह लोग, सिर्फ भय देते हैं... एक बे आवाज डर...।'

'और जे भी दिखे क्या...?'

अरुणा के इस सवाल पर दमयंती कसमसा उठी...।

'कहाँ दिखते हैं जतिन...? जाने के बाद एक बार भी नहीं दिखे... बस उनकी आवाज सुनाई देती है, अँधेरे में सनी लिथड़ी, मन को चीरती हुई आवाज...।'

'क्या कहते हैं?'

'वही, जो जाने के पहले कहते थे... हारना मत। हत्यारों को जीतने मत देना... वह अगर मुझे मार भी दें तो तुम आगे बढ़ कर कमान सँभाल लेना। हम अब तक अपने बेटे के लिए ही जिए हैं, तुम...।'

'क्या तुम? उसके आगे...?'

'उसके आगे क्या... हर बार जतिन के बोलने के दौरान एक कोलाहल उमड़ पड़ता है, जैसे आकाश चीरती हुई शंख ध्वनि, हजार नगाड़ों की तेज आवाज, बादलों की

भयानक गडगडाहट... फिर उसके बाद कुछ सुन पाना कठिन हो जाता है और उभर आती हैं वह सफेद आकृतियाँ... हठात एक स्तब्धता छ जाती है और भय...।'

दमयंती कहते कहते चुप हो गई। अरुणा भी चुप रह गई। एक मौन पसर आया है उन दोनों बहनों के बीच। आज जतिन को गए बयालीसवाँ दिन शुरू हो रहा है। उन्हें मौत सड़क पर से उठा कर ले गयी। बहाना कुछ भी हो सकता है।

ट्रैफिक...।

सड़क पार करते हुए जतिन की भयभीत मनःस्थिति..।

जतिन के भय के विविध रंगों में सफेद आकृतियाँ..।

कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है कि सफेद आकृतियों ने चौतीस वर्षीय दमयंती को सफेद साड़ी में लपेट दिया है। लेकिन दमयंती जानती है क्योंकि जतिन जानता था।

अरुणा कुछ नहीं जानती।

वह चालीस दिनों से अपनी बड़ी बहन के साथ है। जानने की कोशिश में है, लेकिन बस इतना जान पाई है कि कुछ सफेद आकृतियाँ हैं जो दमयंती को दिन रात चौंका कर डरा देती हैं। उसके ऊपर भय इतना भारी है कि भीतर का शोक उभर कर अपनी जगह नहीं बना पा रहा है। अरुणा कोशिश में है कि दमयंती कुछ ऐसा कहे जो उसे विह्वल करे और उसके भीतर से रोना फूट पड़े। वह पल अभी अरुणा को दूर दिखता है। अभी तो दमयंती बस एक पत्थर का टुकड़ा है।

अँधेरी रात के बीच एक खामोशी पसरी हुई है।

तभी, बेहद उथली नींद में कसमसा कर जतिन की माँ करवट बदलती है... वह आँगन में, ऊपर दमयंती के कमरे से गिरे हुए उजाले के टुकड़े को देखती है, अरुणा की खाली चारपाई को देखती है और सिसकने लगती है। जतिन का बेटा उसके पास सोया हुआ है। माँ चादर खींच कर उसे ढक देती है ताकि उसकी हलचल से बच्चा जग न जाय। तमाम कोशिशों के बावज़ूद माँ की सिसकन तेज होती जाती है। और अंततः आँगन में पड़े रौशनी के टुकड़े की राह पकड़ दमयंती के कमरे तक पहुँच जाती है।

'अम्मा का फिर रोना शुरू हो गया है...', अरुणा कहती है।

दमयंती चुप है।

'तुम भी रोओ न दीदी, अम्मा के रोने में हिस्सा बाँट करो, नहीं तो उसका रोना कैसे चुकेगा...? बताओ। दमयंती सिर घुमा कर अपनी नजर अरुणा के चेहरे पर टिका देती है।

'अरुणा, मौत के अपना काम कर गुजरने के ठीक बाद, अगले ही पल, अगले ही घंटे, अगले ही दिन से वह घटना अतीत होने लगती है। मौत तो एक गहरा शोक छोड़ कर चली जाती है, लेकिन एक एक पल, एक एक घंटा, एक एक दिन उस शोक का रंग और आकर बदलता जाता है। शोक का कारण बदलता जाता है। जैसे सूरज के चढ़ने ढलने के साथ पेड़ की परछाईं अपना कद अपनी जगह बदलती है, उसी तरह समय के साथ शोक भी अपना कद और वजन कभी एक सा नहीं रखता।

स्मृतियाँ, मौत के ठीक पहले से जुडे वर्तमान और भविष्य का विस्तार, शोक लहर की डोर तो दर असल इन्हीं के हाथ होती है। अम्मा का शोक भी इसी विस्तार के बीच, अब इन बयालीस दिनों में कहीं ठहरा हुआ होगा... लेकिन मेरे भीतर तो भय है अरुणा, एक विकल करता आक्रोश जो अपने आप में एक भारी शिला बन गया है। वह मरने के दिन तक जतिन के कन्धों पर था, अब मेरे कन्धों पर है। मेरे हिस्से में शोक का विलास कहाँ है अरुणा...? सब कुछ उन सफेद आकृतियों ने छीन लिया है मुझसे। मेरा पति छीन लिया है और मेरे लिए शोक परिधि का दरवाजा भी बंद कर दिया है। माँ को रोने दो... वह मेरे बदले भी रो ले। वह माँ है और सिर्फ माँ ही इतना बड़ा शोक निर्भय हो कर सह सकती है...।'

अरुणा दमयंती का चेहरा देख रही है... एकटक।

अपने रहते इन चालीस दिनों में दमयंती से इतने सारे शब्द अरुणा ने पहली बार एक साथ सुने हैं... नहीं तो बस, दिन हो या रात, केवल यही।,

'...अभी अभी फिर वही सफेद...।'

'हत्यारे...।'

इन बयालीस दिनों में पहली बार दमयंती के मुँह से जतिन का नाम निकला है, लेकिन आँसू नहीं निकले। आँखें तो पहले से ही पथरायी हुई थीं।

अरुणा ने उठ कर दमयंती की पीठ पर अपना हाथ रख दिया...।

'दीदी, सब बताओ... क्या हुआ था...? जे के भीतर भय कहाँ से आया था...?'

'भय वहीँ से आया था अरुणा, जहाँ जतिन के भीतर यह हौसला आया था कि वह अपने बेटे को पढ़ा लिखा कर कुछ अच्छा बना ले जाएँगे... जहाँ जतिन काम के दस ग्यारह घंटे गुजारते थे...।'

'कैसे...?'

'वहाँ कुछ जान लिया था जतिन ने, जो जान लेना उन सफेद आकृतियों के लिए खतरनाक था।, और उनको इस बात का पता लग गया था...।'

'फिर?'

'फिर क्या... गहरा दबाव, आतंक। हालाँकि, जतिन का उस जानकारी को किसी के खिलाफ इस्तेमाल करने का कोई इरादा नहीं था। यह जतिन की प्रकृति में ही नहीं था, वर्ना तनाव सह पाने का अपना तंत्र भी होता उनके पास। लेकिन उस जानकारी के नतीजे से परेशान जरूर थे जतिन...।'

'हूँ..।'

अरुणा की 'हूँ' में उसके भीतर की व्यग्रता छलक आई थी।

'चौबीस घंटे जतिन पर नजर रखी जाती थी... उसकी मेज खाली करा ली गयी थी। टेलीफोन हटा लिया गया था। मरने के तीन दिन पहले जतिन को शक हुआ था कि उसकी कॉफी उसे उनींदी सी तन्द्रा में ले जाने वाली होती है। उसके एक दिन बाद एक चपरासी के हाथ उसकी मेज पर रखा पानी का गिलास जतिन के मोबाइल पर उलट गया था। इस तरह उनके मरने के एक दिन पहले उसका मोबाइल मरा...।'

अरुणा को यह सारी बातें बुरी तरह हिला गईं थीं लेकिन उन्हें बताते समय दमयंती कहीं तरल नहीं हुई। वह शिला थी, शिला बनी रही।

कुछ देर हवा में सिर्फ चुप्पी तैरती रही। तभी दमयंती ने चीख कर कहा, 'ये जतिन कभी मुझे नजर क्यों नहीं आते...? डरते हैं कि मैं उनके सामने बहुत से सवाल रख दूँगी। आखिर वह क्या राज था जिसका उजागार हो जाना इतना खतरनाक था उन सब के लिए...? उसमें जतिन खुद शामिल नहीं थे तो वह भीतर से मजबूत क्यों नहीं थे...?

लेकिन वह तो बस एक आवाज बन कर आते हैं मेरे पास, और पीछे पीछे आता है उसे ढकता शंखनाद... एक दिन मैंने तो इतना कहा था कि यह नौकरी ही छोड़ दो, तो चुप हो गए थे, वह इस बात से भी डर गए थे जैसे...।'

कुछ पल ठहर कर अरुणा ने अपना अगला सवाल सामने रखा..।

'...और यह ओंकार जी कौन हैं?'

दमयंती के चेहरे पर एक लहर आ कर गुजर गयी।

'यहीं पास में एक स्कूल में हेड मास्टर हैं। बुजुर्ग हैं, लेकिन चेतन हैं। जतिन का सिर्फ उन्हीं से बोलना बात करना होता था। इसे चाहे दोस्ती कह लो या तिनके का सहारा। घर के भीतर ओंकार जी कभी नहीं आये। जतिन के पिता का अनुशासन इस मामले में बहुत सख्त था जो उनके जाने के बाद भी निभ रहा है। मैं अक्सर खिड़की के बाहर जतिन और ओंकार जी को पार्क में बैठ कर बात करते देखती थी। हाल के दिनों में बोलते बोलते ओंकार जी अक्सर उत्तेजना में उठ कर खड़े हो जाते थे। वह पार्क घर से जरा दूर है, इसलिए सिर्फ उनका हाव भाव ही मेरे लिए संवाद संकेत होता था।

जिस दोपहर, सड़क पर एक ट्रैक्टर की लपेट में आकर जतिन लहू लुहान गिर पड़े, वहाँ इत्तेफाक से ओंकार जी का कोई स्टूडेंट मौजूद था। उसने भाग कर ओंकार जी को खबर दी कि कोई आदमी दुर्घटना में घायल हो गया है। अजनबी की भी पीर में कराहने वाले ओंकार जी दौड़े और पाया कि उनका दोस्त ही वहाँ दम तोड़ गया है।

उसके बाद सारी दौड़ धूप, सबको खबर, इंतजाम ओंकार जी के स्टाफ और स्कूल के बच्चों ने किया। जतिन के बड़े भाई भाभी दूसरे शहर से दौड़े आए... सबका आना मिथ्या रहा, जतिन तो विदा हो गए। टोले मोहल्ले के लोगों ने और जतिन के भैया ने भी देखा कि शमशान में ही ओंकार जी ने किसी लड़के के बस्ते से कापी खींच कर उसमें से पन्ने फाड़े, वहीं पेड़ के पास बैठ कर ढेर सा लिखा और एक लड़के को दौड़ा दिया। जतिन की मौत को इन्हीं पन्नों ने एक अखबार में जगह दिलाई, जिसमें ओंकार जी की ओर से जतिन की मनःस्थिति और दफ्तर से जुड़े मानसिक तनाव को दुर्घटना का कारण बताया गया था। इस खबर से सफेद आकृतियाँ परेशान हो गयीं और अपनी फर्क चाल तलाशने लगीं... साथ ही मेरी शोक परिधि का दायरा तेजी से सिमटने लगा।

जतिन की मौत के दस दिन बाद से ही जतिन के दफ्तर से नर्म मुलायाम फोन मेरे पास आने लगे... छद्म सहानुभूति, जो दबाव रचने की नई जगह बना रही थी।

पता नहीं किस बातचीत में मैं बौराई अन्यमनस्क क्या कह गई, मैंने किस कागज पर सही कर दिया जिसकी फोटोकॉपी तक मैंने नहीं माँगी और एक दिन अखबार में मेरा बयान आ गया कि जतिन पहले से बीमार थे, उन पर बाहर का कोई दबाव तनाव नहीं था और कठिनाई के दौर में जतिन के दफ्तर वालों ने बहुत हमदर्दी दिखाई। इस बारे में अखबार में पहले जो छपा है, और जिस किसी ने बताया है वह सच नहीं है... अपने पति की मौत को मैंने हरि इच्छा मान कर किसी तरह सह लिया है।

जतिन के बड़े भाई इस खबर को पढ़ कर हतप्रभ रह गए थे, तो मेरी जेठानी ने कहा था, '... ठीक है, अगर वह इतने ही मेहरबान हैं तो तुम्हें इतने बड़े मोहकमें में कहीं नौकरी दे दें... इसी शहर में इनके तीन ऑफिस हैं।'

मेरे कान में जतिन की आवाज गूँजने लगी थी, मेरे शोक को धकेल कर वहाँ एक नए राग ने जगह बनानी शुरू कर दी थी। उसके बाद जतिन के दफ्तर से कोई न कोई अक्सर आने लगा। वह माँ से बात करते, मुझसे बात करते और हमारे इरादे टटोल कर वापस चले जाते।

आज दोपहर में जतिन के दफ्तर से कोई उपाध्याय नाम का आदमी आया था और पास के एक दफ्तर में मेरी नौकरी का नियुक्ति पत्र दे गया। ठीक ठाक तनख्वाह है, हफ्ते में पाँच दिन का काम है। तुम उस समय माँ की दवाई लेने गई हुईं थी अरुणा, और माँ तटस्थ अपने कमरे में बैठी थी।

वह कागज पकड़ते हुए मैं यकायक ओंकार जी को याद कर के डर गई थी, इतना जितना शायद उन सफेद आकृतियों से भी नहीं डरी। उपाध्याय के जाने के करीब पंद्रह मिनट बाद ओंकार जी एकदम पहली बार घर के खुले दरवाजे से देहरी पार कर के भीतर आये थे। मैं अभी भी हाथ में वह चिट्ठी थामे चुपचाप बैठी थी।

वह आ कर, मौन, सामने बैठ गए।

'तुम्हें नौकरी दे दी न बेटी... ठीक है, हरि इच्छा।'

उस के बाद उनकी आवाज रुँध गई थी।

मैं काँप गई थी। उस दिन अखबार में भी मेरे बयान के साथ यही शब्द लिखे थे, 'हरि इच्छा...।'

मैंने ओंकार जी का चेहरा अचकचा कर देखा।

मुझे लगा कि वह मेरे हाथ से छीन कर वह चिट्ठी चिंदी चिंदी कर देंगे। सच कहूँ, मैं चाहती भी यही थी। मेरे चित्त में शोक की जगह अब यही द्वन्द्व चल रहा था, लेकिन ओंकार जी के चेहरे पर आक्रोश, विरोध, या युयुत्सा के कोई संकेत नहीं थे।

फिर पता नहीं क्या हुआ कि वह बच्चों की तरह फूट फूट कर रो पड़े। माँ आ गई उनके पास। कुछ देर बाद तुम भी आ गईं अरुणा, और वह रोते रहे। रो चुकने के बाद कुछ सहजता उनके स्वभाव में लौटी।

'ठीक है बेटा, काम शुरू करो और जतिन का अभियान आगे बढाओ। मैं एक अध्यापक हूँ बेटा, सत्य और न्याय का पाठ पढ़ाना मेरा काम है। इस में शक नहीं कि हत्यारे वह हैं और यह सहानुभूति उनका छद्म है, लेकिन सच शब्द का आग्रह मैं मानवीयता की कीमत पर कैसे चुन सकता हूँ...?

अब मैं जतिन के प्रसंग में उन लोगों के विरुद्ध कुछ भी नहीं कहूँगा... तुम निश्चिंत रहो बेटा...।'

ओंकार जी यकायक उठे और वापस चल दिए थे और सांसारिक स्वार्थ के गलियारे में उतरते हुए मुझे एक निस्वार्थ भय से मुक्ति मिली थी...।

मैं कल, उन हत्यारों को, यह नियुक्ति स्वीकारते हुए धन्यवाद पत्र भेजूंगी। इस आधी रात को यह सफेद आकृतियाँ यह देखने आईं थीं कि उनकी यह छद्म मानवीयता मेरे हाथों में कहाँ है... इन हत्यारों ने जतिन की मौत के साथ ही मुझे खींच कर मेरी शोक परिधि के बाहर ला पटका था। लेकिन अब ये बताओ अरुणा, कि अगले हफ्ते जब मैं यह नौकरी शुरू कर दूँगी, तब तक क्या मेरा शोक मेरे इंतजार में उसी रूप में मुझे मिलेगा जिस रूप में वह जतिन की मौत के ठीक उसी पल उपजा था...?'

अपना प्रश्न अरुणा को सौंप कर दमयंती चुप हो गयी। उसका सिर कुर्सी पर टिक गया और आँखें उनींदी होते हुए मुँदने लगीं।

अरुणा ने हौले से उठा कर दमयंती को उसके बिस्तर पर लिटा दिया।

लाइट बुझा कर अब अरुणा सीढ़ियों से नीचे उतर रही है और उसके भीतर प्रश्नों का गहरा चक्रवात है।

'क्या अब सचमुच दीदी को सफेद आकृतियाँ दिखनी बंद हो जाएँगी?'

'या उसी तंत्र में पहुँच कर वह सफेद आकृतियों से और घिर जाएगी?'

'ऐसा भी तो हो सकता है...' सोच कर अरुणा के पैर सीढ़ियों पर थम जाते हैं। 'ऐसा भी तो हो सकता है कि सफेद साड़ी में लिपटी दमयंती एक दिन उन्हीं में एक और सफेद आकृति हो जाय, किसी दूसरी दमयंती को डराने के लिए...?'

अब अरुणा को सीढ़ियाँ उतरने में डर लगने लगा। अब तो आँगन में गिरा हुआ कोई रौशनी का टुकड़ा भी नहीं है।